2005:CGHC:4050

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

W.P. No. 5064/1999

छत्तीसगढ़ डिस्टिलरी

विरुद्ध

महासचिव, छत्तीसगढ़ केमिकल मिल मजदूर संघ एवं अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

निर्णय

(दिनांक 7 जुलाई 2005 को उदघोषित)

हस्ता /-

मुख्या न्यायाधीश

हस्ता /-

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश

2005:CGHC:4050

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

(खंडपीठ)

खण्डपीठ: माननीय श्री ए. के. पटनायक, मुख्य न्यायाधिपति
माननीय श्री सुनील कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

W.P. No. 5064/1999

छत्तीसगढ़ डिस्टिलरी

विरुद्ध

महासचिव, छत्तीसगढ़ केमिकल मिल मजदूर संघ एवं अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उपस्थित अधिवक्तागण:

श्री ए. एम. माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री आर. के. गुप्ता, और श्री रोहित आर्य, वरिष्ठ अधिवक्ता संहित श्री अभिषेक सिन्हा, अधिवक्ता — याचिकाकर्ता की ओर से।

श्री सुजॉय पॉल, अधिवक्ता संहित श्रीमती भारद्वाज, अधिवक्ता — उत्तरवादी क्रं.1 की ओर से।

श्री वी. वी. एस. मूर्ति, उप महाधिवक्ता — उत्तरवादी क्रं.3 / छत्तीसगढ़ शासन की ओर से।

निर्णय

(दिनांक 7 जुलाई 2005 को उदघोषित)

सुनील कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति.

यह रिट याचिका दिनांक 16.10.1999 को राज्य औद्योगिक न्यायालय, म.प्र., खंडपीठ रायपुर द्वारा मध्य प्रदेश औद्योगिक संबंध अधिनियम, 1960 (अधिनियम क्रमांक 27 सन् 1960) की धारा 51 के अंतर्गत संदर्भित प्रकरण क्रमांक 10/एम.पी.आई.आर. अधिनियम/1996 में पारित अधिनिर्णय को रद्द/निरस्त करने हेतु दायर की गई है।

(2) प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी है, जो भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत पंजीकृत है और जिसकी एक फैक्ट्री ग्राम खपरी, डाकघर कुम्हारी, जिला दुर्ग (छत्तीसगढ़) में स्थित है। उक्त कंपनी पेय एल्कोहल (पिने योग्य शराब) का उत्पादन करती है और आबकारी अधिनियम के अंतर्गत राज्य सरकार को आपूर्ति करती है। याचिकाकर्ता और कर्मचारियो के बीव उत्तरवादी संघ के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं को लेकर एक औद्योगिक विवाद के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट होने पर, राज्य सरकार ने मध्यप्रदेश औद्योगिक संबंध अधिनियम, 1960 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा जायेगा) की धारा 51 के अंतर्गत इस मामले को औद्योगिक न्यायालय, रायपुर को 26.02.1993 को न्याय-निर्णयन हेतु संदर्भित किया। संदर्भ की शर्तें इस प्रकार हैं:

(अ) क्या वेतन एवं भत्तों के पुनरीक्षण का औचित्य है? यदि हाँ तो वेतन, भत्ता एवं अन्य भत्तों की क्या योजना होना चाहिए एवं इस संबंध में नियोजक को क्या निर्देश दिए जाना चाहिए?

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(ब) क्या प्रति वर्ष 15 दिन का आकस्मिक अवकाश, 10 दिन का त्योहारी अवकाश तथा 30 दिन का चिकित्सा अवकाश दिए जाने का औचित्य है? यदि हाँ तो इस संबंध में नियोजक को क्या निर्देश दिए जाना चाहिए?

(स) क्या संलग्न परिशिष्ट में उल्लेखित एम्प्लाईज का सेवा पृथकीकरण वैध एवं उचित है? यदि नहीं तो इस संबंध में नियोजक को क्या निर्देश दिए जाना चाहिए?

(3) पक्षकारों को नोटिस की तामीली के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 27.04.1993 को एक प्रारंभिक आपत्ति दायर की गई थी। उक्त प्रारंभिक आपत्ति में मुख्य रूप से यह तर्क दिया गया कि जब संदर्भ दिया गया था तब अधिनियम की धारा 51 की उप-धारा (2) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया कि पक्ष क्रं.1 अर्थात उत्तरवादी क्रं.1 ने कभी भी कोई विवाद नहीं उठाया और अधिनियम की धारा 31 के अंतर्गत याचिकाकर्ता को "जे" प्रपत्र में परिवर्तन की कोई सूचना नहीं दी। आगे कहा गया कि अधिनियम की धारा 39(1) की आवश्यकताओं का पालन नहीं किया गया है और चूंकि मामला कभी भी सुलह की प्रक्रिया में नहीं लाया गया, अतः अधिनियम की धारा 43(2) के अंतर्गत मुख्य सुलहकर्ता को कोई रिपोर्ट नहीं भेजी गई। जैसा कि अधिनियम की धारा 43(6) के तहत आवश्यक है, अपेक्षित पक्षकारो की सहमति कभी प्राप्त नहीं की गई और सुलह कार्यवाही का सहारा नहीं लिया गया, इसलिए

अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। इसे भी आपत्ति के रूप में लिया गया कि संदर्भ सहित संलग्न सूची में शामिल व्यक्तियों के निलंबन संबंधी विवाद कोई ऐसा विवाद नहीं है जिसका अन्य माध्यमों से निस्तारण होने की संभावना न हो। इन आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्रार्थना की गई कि चूँकि आपत्तियाँ मामले की जड़ तक जाती हैं और औद्योगिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार से संबंधित हैं, अतः उन्हें पहले प्रारंभिक मुद्दों के रूप में निर्णित किया जाना चाहिए।

(4) उक्त आपत्ति प्राप्त होने के बाद मामले को औद्योगिक न्यायालय, रायपुर के द्वारा दिनांक 20.10.1994 को अध्यक्ष, औद्योगिक न्यायालय, इंदौर के पास एक बड़े पीठ के गठन हेतु भेजा गया ताकि वही इस पर निर्णय ले सके। दिनांक 31.05.1995 को औद्योगिक न्यायालय, इंदौर की खंडपीठ ने पक्षों को सुनने के बाद इस मामले का निर्णय लिया। उक्त निर्णय में याचिकाकर्ता द्वारा प्रारंभिक आपत्ति में उठाए गए प्रश्नों पर विचार किया गया और उसे खारिज कर दिया गया।

(5) राज्य सरकार ने दिनांक 24.05.1995 को 807 कर्मचारियों की सूची को, कर्मचारियों की मूल सूची में अनुसूची के रूप में संलग्न करते हुए, संदर्भ की टर्म/शर्त क्रं.3 में जोड़ा। इसे दिनांक 07.08.1995 को न्यायाधिकरण के अभिलेखों का हिस्सा बनाया गया। इसके बाद, राज्य सरकार ने 31.7.1995 के अपने आदेश के माध्यम से औद्योगिक न्यायालय को दिए गए संदर्भ में शर्त क्रं.4 को जोड़ा जो अंतरिम राहत से संबंधित है जिसके बाद उत्तरवादी यूनियन/संघ ने दिनांक 11.9.1995 को औद्योगिक न्यायालय के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत किया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(6) चूंकि संदर्भ की स्वीकार्यता पर प्रारंभिक आपत्ति खारिज कर दी गई थी, अतः याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय की इंदौर पीठ के एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका क्रं. W.P. No. 1231/1995 दायर की गई, परंतु यह याचिका भी आदेश दिनांक 27.09.1996 के अनुसार खारिज कर दी गई। उक्त बर्खास्तगी के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने डिवीजन बेंच के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील (एल.पी.ए.) क्रं.156/1996 दायर की। अंततः यह मामला पूर्ण पीठ के समक्ष गया और आदेश दिनांक 06.4.1999 के अनुसार पूर्ण पीठ ने उक्त एल.पी.ए. का निपटारा कर दिया और औद्योगिक न्यायालय, रायपुर को निर्देशित किया कि वह चार माह की अवधि के भीतर विधिवत पक्षकारों को सुनकर विधि के आधार पर संदर्भ पर निर्णय दे। पक्षकारों को 10 मई 1999 को औद्योगिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। वास्तव में, एल.पी.ए. का निपटारा पूर्ण पीठ द्वारा एक सहमति आदेश के माध्यम से किया गया, जिसके द्वारा औद्योगिक न्यायालय का आदेश दिनांक 31.5.1995, जिसमें प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार किया गया था,

संदर्भ की स्वीकार्यता को बनाए रखते हुए और रिट न्यायालय के आदेश दिनांक 27.9.1996 को पुष्टि प्रदान करते हुए, औद्योगिक न्यायालय के उक्त आदेश को स्वीकार किया गया और राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक न्यायालय को दिया गया संदर्भ वैध पाया गया। यह भी कहा गया कि उच्च न्यायालय की उत्तरवर्ती पीठों द्वारा किए गए किसी भी अवलोकन, जो पक्षकारों के मध्य विवाद के सार तथा गुण-दोष से संबंधित हैं, का औद्योगिक न्यायालय द्वारा संदर्भ के उचित निराकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, और औद्योगिक न्यायालय ऐसे किसी आदेश से अप्रभावित होकर मामले की सुनवाई करेगा।

(7) उक्त आदेश के पश्चात् प्रकरण को पुनः औद्योगिक न्यायालय द्वारा विचारार्थ लिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने, जबकि औद्योगिक न्यायालय द्वारा उसे बार-बार अवसर दिए गए, अपनी लिखित कथन या दावे का विवरण दाखिल नहीं किया और अंततः पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु बुलाया गया। उत्तरवादी क्रं.1 ने केवल एक गवाह का परिक्षण कराया और अपना साक्ष्य समाप्त घोषित करा दिया। हालांकि उत्तरवादी क्रं.1 के गवाह से याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रतिपरीक्षण किया गया, परंतु याचिकाकर्ता ने न तो कोई मौखिक और न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य इस मामले में प्रस्तुत किया। औद्योगिक न्यायालय ने तर्कों को सुनने के बाद दिनांक 16.10.1999 को आक्षेपित निर्णय पारित किया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को निर्देश जारी किया गया कि संदर्भ आदेश में सूचीबद्ध श्रमिकों को 66% पिछले वेतन के साथ पुनः बहाल किया जाए। यह भी निर्देशित किया गया कि न्यूनतम वेतन, महंगाई भत्ता और अन्य भत्ते, जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए गए हैं, कर्मचारियों को उनकी बहाली की तिथि से देय होंगे। इसी आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने यह रिट याचिका दायर की है।

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(8) श्री ए.एम. माथुर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता, के द्वारा यह तर्क दिया गया कि संदर्भ की शर्त क्रं.3 को राज्य सरकार द्वारा बहुत लंबे समय के बाद गलत रूप से संशोधित किया गया, जिसमें संदर्भ के साथ संलग्न अनुसूची में व्यक्तियों की एक सूची जोड़ी गई। यह भी तर्क दिया गया कि ऐसा संशोधन अधिनियम 1960 की धारा 52-ए के विरुद्ध है। आगे यह तर्क दिया गया कि यह अभिलेख पर स्पष्ट विधिक त्रुटि है क्योंकि राज्य सरकार को संदर्भ में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं था, और परिणामस्वरूप औद्योगिक न्यायालय को उस विषय पर न्याय-निर्णयन करने का कोई अधिकार नहीं था जो कि बाद में राज्य सरकार द्वारा किए गए संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया था।

वे आगे यह कहते हैं कि संदर्भ की शर्त क्रं.3 श्रमिकों की सेवा पृथकीकरण से संबंधित है, जबकि संदर्भ के साथ संलग्न सूची में दिखाया गया है कि श्रमिक निलंबित व्यक्ति हैं। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता यह तर्क करते हैं कि औद्योगिक न्यायालय ने निलंबित व्यक्तियों के मामले पर विचार करते हुए विधिक रूप से गलती की है, जबकि संदर्भ की शर्त क्रं.3 केवल बर्खास्त किए गए व्यक्तियों से संबंधित है।

तीसरा तर्क यह है कि औद्योगिक न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि उत्तरवादी यूनियन/संघ केवल एक पंजीकृत यूनियन/संघ है और कोई मान्यता प्राप्त यूनियन/संघ नहीं है, इसलिए वह ऐसा दावा कायम नहीं रख सकता। उन्होंने यह तर्क दिया कि न तो दावे के ब्यान में और न ही साक्ष्य में यह कहा गया है कि नामित व्यक्ति उत्तरवादी यूनियन/संघ के सदस्य थे, इसलिए इस संदर्भ में नामित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व औद्योगिक न्यायालय के समक्ष यूनियन/संघ द्वारा नहीं किया जा सकता था।

उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उत्तरवादी यूनियन/संघ द्वारा दावे के ब्यान के माध्यम से प्रस्तुत किया गया दावा इस संबंध में गवाहों की जांच के आधार पर स्थापित नहीं किया गया है, इसलिए उत्तरवादी क्रं.1 यह स्थापित करने में असफल रहा कि नियोजन का तथ्य, व्यक्तियों की पहचान, नियुक्ति की तिथि तथा सेवा पृथकीकरण की तिथि आदि क्या थी, एवं औद्योगिक न्यायालय के न्यायाधीश ने उत्तरवादी यूनियन/संघ के पक्ष में राहत प्रदान करके विधिक त्रुटि की है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

संक्षेप में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने औद्योगिक न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्ष पर इस आधार पर आपत्ति प्रस्तुत की है कि, यूनियन/उत्तरवादी क्रं.1 द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों का अभाव है तथा यह निष्कर्ष केवल सहानुभूतिपूर्ण विचारों पर आधारित है।

अंत में यह भी कहा गया है कि संदर्भ की शर्त क्रं.1 एवं 2 का उत्तर भी गलत है और अभिलेख किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि नियोजक की आर्थिक क्षमता से संबंधित निष्कर्ष दर्ज किए बिना, इस प्रकार का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता।

(9) इसके विपरीत, उत्तरवादी क्रं.1/यूनियन की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क किया कि जहां तक संदर्भ की स्थिरता के संबंध में तकनीकी आपत्तियों का प्रश्न है, उन्हें इस स्तर पर फिर से नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि यह मामला अंततः मप्र उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा उपरोक्त एल.पी.ए. में पारित दिनांक 27.11.2000 के आदेश द्वारा समाप्त हो चुका है, जो वास्तव में एक सहमति आदेश था और याचिकाकर्ता द्वारा इस पर सहमति व्यक्त की गई थी और उक्त न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना है एवं संदर्भ उचित और व्यवस्थित तथा विधि के अनुरूप होना चाहिए।

उन्होंने यह भी कहा कि औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में साक्ष्य अधिनियम के सख्त सिद्धांत लागू नहीं होते हैं और न्यायाधिकरण ने कर्मचारियों की अवैध बर्खास्तगी के संबंध में सही निष्कर्ष निकाला है तथा यह भी सही माना है कि कर्मचारियों को 66% बकाया वेतन के साथ बहाल किया जाना चाहिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(10) हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना एवं औद्योगिक न्यायालय के अभिलेखों का अवलोकन किया।

(11) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला मुद्दा राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त सूची प्रस्तुत करने से संबंधित है, जिसमें संदर्भ की शर्त क्रं.3 में संलग्न अनुसूची में कर्मचारियों के नाम जोड़ने की बात है। जैसा कि ऊपर पहले ही कहा गया है, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क है कि अधिनियम 1960 के तहत संदर्भ में संशोधन का कोई प्रावधान नहीं है और यदि कोई संशोधन किया जाना हो, तो वह केवल उक्त अधिनियम की धारा 52-ए के अंतर्गत ही किया जा सकता है। वह हमें धारा 52-ए के प्रावधानों की ओर ले जाते हैं। यह धारा राज्य सरकार को अन्य उपक्रमों को संदर्भ में सम्मिलित करने की शक्ति से संबंधित है। यह स्थापित करता है कि जब किसी उद्योग या उसकी शाखा में किसी उपक्रम से संबंधित कोई औद्योगिक विवाद उठता है या उसे धारा 51 या धारा 52 के अंतर्गत संदर्भित किया गया है या किया जाना है, राज्य सरकार की राय है कि विवाद इस तरह का है कि समान प्रकृति के किसी उपक्रम समूह या उपक्रमों के वर्ग के ऐसे विवाद में रुचि होने या इससे प्रभावित होने की संभावना है, वहां राज्य सरकार ऐसा निर्देश करते समय या उसके पश्चात् किसी भी समय ऐसे उपक्रमों, उपक्रमों के समूह या वर्ग को उस निर्देश में सम्मिलित कर सकेगी, चाहे ऐसे सम्मिलित किए जाने

के समय उस उपक्रम, उपक्रमों के समूह या वर्ग में कोई विवाद विद्यमान हो या उसकी आशंका हो।

विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि यह एकमात्र ऐसा प्रावधान है जो राज्य सरकार को संदर्भ में संशोधन करने का अधिकार देता है और इसके अलावा अन्य कोई संशोधन की शक्ति नहीं दी गई है। अतः, सरकार द्वारा अनुसूची में अधिक संख्या में श्रमिकों को जोड़ने की जो कार्यवाही की गई, वह अधिकार क्षेत्र से बाहर है। न तो सरकार को ऐसा करने का कोई अधिकार था और न ही औद्योगिक न्यायालय के पास उन व्यक्तियों से संबंधित मामलों में निर्णय देने का कोई अधिकार क्षेत्र था जिनके नाम बाद में संदर्भ की शर्त क्रं.3 से संलग्न अनुसूची में जोड़े गए।

दूसरी ओर, उत्तरवादी/यूनियन के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि वस्तुतः यह संदर्भ की शर्तों में संशोधन की कोई घटना नहीं है। सरकार ने संदर्भ की शर्तों में कोई संशोधन नहीं किया है, बल्कि केवल अनुसूची में कुछ और व्यक्तियों के नाम जोड़कर उसमें सुधार किया है। इसी कारण, याचिकाकर्ताओं द्वारा इस विषय की सुनवाई के किसी भी चरण में — चाहे वह न्यायाधिकरण के समक्ष हो या उच्च न्यायालय की एकल पीठ या पूर्ण पीठ के समक्ष — कोई आपत्ति नहीं की गई। चूंकि याचिकाकर्ता न्यायाधिकरण के समक्ष हार गए हैं, इसलिए वे इस बिंदु को संदर्भित शर्तो में संशोधन बताकर इसे उठाने का अवसर ले रहे हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(12) हमने औद्योगिक न्यायाधिकरण/ट्रिब्यूनल के अभिलेखों को देखा है और यह पाया है कि राज्य सरकार द्वारा किया गया उपरोक्त समावेश दिनांक 24.5.1995 के पत्र के माध्यम से किया गया था, जिसे औद्योगिक न्यायाधिकरण/ट्रिब्यूनल के अभिलेखों का हिस्सा बनाते हुए 27.8.1995 को प्रस्तुत किया गया। अभिलेखों के अवलोकन के बाद यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा न तो औद्योगिक न्यायाधिकरण/ट्रिब्यूनल के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई गई और न ही अतिरिक्त आधार लेकर उच्च न्यायालय अथवा अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। आक्षेपित अधिनिर्णय के पूर्ण अवलोकन से भी यह स्पष्ट होता है कि यह आधार मामले की अंतिम सुनवाई के समय नहीं उठाया गया था, और अंततः, आक्षेपित अधिनिर्णय याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए उक्त बिंदु पर कोई टिप्पणी किए बिना पारित कर दिया गया, जो कि इस न्यायालय के समक्ष इस रिट याचिका के माध्यम से पहली बार उठाया गया है।

(13) चूंकि यह आधार पहली बार रिट याचिका में लिया गया है, अतः औद्योगिक न्यायाधिकरण/ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित अधिनिर्णय की वैधता को इस आधार पर सीधे इस

न्यायालय में परखा नहीं जा सकता। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय अधीनस्थ प्राधिकरणों या न्यायाधिकरणों की कार्यवाहियों पर अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता। इसे केवल प्राधिकरणों द्वारा की गई क्षेत्राधिकार की त्रुटियों को सुधारने तक ही सीमित रहना होता है और यह अपीलीय न्यायालय का स्वतः क्षेत्राधिकार ग्रहण करके ट्रिब्यूनल द्वारा की गई हर कथित त्रुटि को सुधारने का प्रयास नहीं कर सकता। यहां तक कि न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान न होने की स्थिति में भी उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप की शक्तियों को नहीं बढ़ा सकता और उच्च न्यायालय अपीलीय प्राधिकरण की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के **(1998) 8 सुप्रीम कोर्ट केस 237 (उपयुक्त प्राधिकारी और अन्य बनाम सुधा पाटिल (श्रीमती) और अन्य)** में उल्लिखित निर्णय का संदर्भ लिया गया। यदि हम अन्यथा भी इस मामले की जांच करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि संदर्भ की शर्तों में कोई संशोधन नहीं किया गया है। केवल सूची को ही सुधारा गया है और शर्त क्रं.3 को वैसा का वैसा ही छोड़ा गया है। वास्तव में, शर्त क्रं.3 के तहत संदर्भित मामला इस मामले में याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किये गये "सामूहिक पृथकीकरण" की वैधता की जांच करना था और जिस सूची को संलग्न किया गया है उसमें सुधार का इस शर्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अतः हम याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गये तर्कों से सहमत नहीं हैं और इसलिए हम उन्हें अस्वीकार करते हैं।

(14) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दूसरा तर्क यह किया गया कि संदर्भ की शर्त क्रं.3 में जिन व्यक्तियों को सूचीबद्ध किया गया है, वे निलंबित व्यक्ति दर्शाए गए हैं, जबकि संदर्भ का संबंध उन व्यक्तियों के न्यायनिर्णयन से है जिन्हें बर्खास्त किया गया है; अतः, यह संदर्भ स्वयं में ही अवैध है और आवश्यक उल्लेखों की कमी है।

विद्वान् अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क इस स्तर पर कायम नहीं रखा जा सकता है। यदि हम औद्योगिक न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रारंभिक आपत्ति की जांच करें, तो यह स्पष्ट होगा कि यह आपत्ति उक्त आपत्तियों में आधार क्रं.(i) के अंतर्गत उठाई गई थी और औद्योगिक न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 31.3.1995 के अपने आदेश द्वारा इसे निरस्त कर दिया था। इस आदेश के विरुद्ध, एकल पीठ के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी और एकल पीठ ने भी इस रिट याचिका को खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध पत्र पेटेंट अपीलें दायर

की गई थीं, जिन्हें अंततः समान आदेश दिनांक 06.04.1999, जो मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ द्वारा पारित किया गया था, और इस आपत्ति व अन्य आपत्तियों के संबंध में पारित आदेशों की पुष्टि की गई और उन्हें कायम रखा गया। आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

> ***2.*** *कुछ समय तक बहस करने के पश्चात्, पक्षकारों के अधिवक्ताओं ने निम्न सहमति आदेश के द्वारा इन अपीलों के निपटारे पर सहमति व्यक्त की:*
>
> ***1.*** *औद्योगिक न्यायालय का आदेश दिनांक 31.5.1995, जिसमें संदर्भ की स्थिरता को बनाये रखा गया था और रिट न्यायालय का आदेश दिनांक 27.9.1996, जिसमें उक्त आदेश की पुष्टि की गई थी, उसे स्थिर रखा गया। दूसरे शब्दों में, सरकार द्वारा औद्योगिक न्यायालय को किया गया संदर्भ विधिसम्मत पाया गया और अपीलकर्ताओं द्वारा इस पर आगे कोई आपत्ति नहीं की जा सकेगी।*

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रारंभिक चरण में उठाया गया यह बिंदु मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ द्वारा उपर्युक्त आदेश के माध्यम से, जो कि एक सहमति आदेश था, निर्णयित हो चुका है और यह मामला समाप्त माना जाता है। याचिकाकर्ता अब इस न्यायालय के समक्ष इन बिंदुओं को पुनः नहीं उठा सकता। इसके अलावा, संदर्भ की शर्त क्रं.3 के साथ संलग्न चार्ट एक विशेष तिथि पर कर्मचारियों की स्थिति को दर्शाता है। इस चार्ट में एक कॉलम में किया गया उल्लेख याचिकाकर्ताओं की वर्तमान स्थिति अथवा वह स्थिति जो राज्य सरकार की संतुष्टि की तिथि पर थी, को संदर्भ बनाने हेतु साक्ष्य के रूप में नहीं लिया जा सकता।

(15) जहाँ तक तीसरे प्रस्तुतीकरण का संबंध है, जो कि वर्तमान यूनियन/उत्तरवादी क्रं.1 द्वारा कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने की प्राधिकारीता से संबंधित है, यह बिंदु याचिकाकर्ता द्वारा जवाबदावा दाखिल कर नहीं उठाया गया, जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है। याचिकाकर्ता ने कोई भी उत्तर, लिखित बयान अथवा स्वयं का कोई दावा-कथन औद्योगिक न्यायालय के समक्ष दाखिल नहीं किया है। यह तर्क केवल याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिस पर न्यायाधिकरण ने कहा कि यह बिंदु पूर्णपीठ द्वारा पारित आदेश के माध्यम से अंतिम रूप से समाप्त हो चुका है, क्योंकि पूर्णपीठ ने सभी तकनीकी आपत्तियों को सहमति आदेश पारित कर गुण-दोष के आधार पर अधिनिर्णय पारित करते हुए खारिज कर दिया था। हमारे समक्ष यह तर्क किया गया कि चूंकि वर्तमान संघ एक पंजीकृत संघ है परंतु प्रतिनिधि संघ नहीं है, और यह

अभिलेख पर नहीं लाया गया है कि कर्मचारी इस पंजीकृत संघ के सदस्य हैं, अतः यह संघ उनके मामले का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम नहीं है। हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किये गये इस तर्क पर विचार किया। अधिनियम की धारा 51 के अंतर्गत श्रम न्यायालय, औद्योगिक न्यायालय या बोर्ड को विवाद संदर्भित करने का प्रावधान है, और इस धारा में परिभाषित संस्था "सरकार" है। यह प्रावधान किया गया है कि यदि श्रम अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट या अन्यथा के आधार पर सरकार संतुष्ट है कि कोई औद्योगिक विवाद मौजूद है और धारा की उपधारा (क) से (ग) में वर्णित किसी स्थिति की भी पुष्टि होती है, जिसे दो खण्डों के परंतुक के साथ पढ़ा जाता है, तो सरकार को यह विवेकाधिकार प्राप्त है कि वह उक्त विवाद को न्यायालय या बोर्ड को संदर्भित करे। धारा 52 में संघों द्वारा संदर्भ देने का प्रावधान है और यह प्रावधान दिया गया है कि "प्रतिनिधि संघ" औद्योगिक विवाद को न्याय-निर्णयन के लिए संदर्भित कर सकता है, यदि मामला अनुसूची-1 से संबंधित है तो बोर्ड या औद्योगिक न्यायालय को, और यदि मामला अनुसूची-1 से इतर है तो श्रम न्यायालय को। “प्रतिनिधि संघ” का यह अधिकार उन शर्तों के अधीन है जो उपधारा (1) के परंतुक के तीन खण्डों में वर्णित हैं। "प्रतिनिधि संघ" शब्द की परिभाषा अधिनियम कि धारा 2(28) में दी गई है, जिसका अर्थ है एक संघ जिसे कुछ समय के लिए अधिनियम के अंतर्गत एक प्रतिनिधि संघ के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"पंजीकृत संघ" शब्द को धारा 2 में परिभाषित नहीं किया गया है, बल्कि साधारण शब्द 'संघ' को धारा 2(34) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है एक ऐसा कर्मचारियों का ट्रेड यूनियन जो भारतीय ट्रेड यूनियनों अधिनियम, 1926 के अंतर्गत पंजीकृत है। अतः, जहां तक विवाद को संबंधित न्यायालय या बोर्ड को संदर्भित करने का प्रश्न है, वे अधिनियम की धारा 51 और 52 के प्रावधानों द्वारा शासित होते हैं। इन दोनों धाराओं के बीच मूलभूत अंतर यह है कि धारा 51 के अंतर्गत संदर्भ सरकार द्वारा किया जाता है। यद्यपि धारा 52 के अंतर्गत 'प्रतिनिधि संघ' को संदर्भ का अधिकार प्रदान किया गया है। निश्चित रूप से, वर्तमान मामला अधिनियम की धारा 52 के अधीन शासित नहीं है और यह धारा 51 के अधीन शासित है क्योंकि यह संदर्भ उत्तरवादी/यूनियन द्वारा नहीं किया गया था, बल्कि उत्तरवादी यूनियन के अनुरोध पर राज्य सरकार द्वारा किया गया था।

प्रस्तुत तर्क यह है कि यह यूनियन श्रमिकों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती क्योंकि कहीं यह नहीं कहा गया है कि श्रमिक इस यूनियन के सदस्य थे। इस न्यायालय की राय में, यह तथ्य का प्रश्न है, जिसे औद्योगिक न्यायालय द्वारा तब जांचा गया होता यदि याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई

लिखित बयान दाखिल करके या अन्य माध्यम से आपत्ति दर्ज की गई होती। चूंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा हमारे समक्ष ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह प्रदर्शित हो कि कर्मचारी प्रतिवादी यूनियन के सदस्य नहीं थे, अतः इस संबंध में हम कोई राय व्यक्त करने में असमर्थ हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क इस संदर्भ के अभिलेखो में उपलब्ध किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है।

(16) अब अगले तर्क पर आते हैं कि वास्तव में उत्तरवादी संघ औद्योगिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपने दावे को सिद्ध नहीं कर पाई। सबसे पहले, हम संघ द्वारा किए गए दावे के कथन का उल्लेख करेंगे। विशेष रूप से संदर्भ क्रं.3 से संबंधित उत्तरवादी संघ द्वारा दायर दावे के कथन में कहा गया है कि अनुसूची में सूचीबद्ध सभी श्रमिक याचिकाकर्ता के कर्मचारी थे। उनके प्रतिष्ठान पर मानक स्थायी आदेश लागू होते हैं। यह कहा गया है कि इन श्रमिकों को न तो कोई आरोप पत्र जारी किया गया और न ही कोई जांच की गई, और उन्हें उनकी नौकरियों से निष्कासित कर दिया गया। यहां तक कि सेवा से पृथक(निष्कासित) किये जाने का आदेश भी उन्हें सूचित नहीं किया गया और श्रमिकों को कोई भी छंटनी मुआवज़ा नहीं दिया गया। यह भी कहा गया है कि संदर्भ में उल्लिखित श्रमिकों से कनिष्ठ श्रमिकों को बनाए रखा गया और नए श्रमिकों की भी नियुक्ति की गई है। यह भी कहा गया है कि श्रमिक हमेशा काम करने के लिए तैयार हैं, जिससे उन्हें अवैध रूप से वंचित किया गया है। उपरोक्त सभी तथ्यों को दावे के कथनों के पैरा 8 से 20 में उल्लेखित करते हुए, उत्तरवादी संघ ने यह प्रार्थना की है कि संबंधित श्रमिकों को सेवा में पुनः नियुक्त किया जाए और उन्हें सभी लाभ/वेतन/मुआवज़ा प्रदान किया जाए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

जैसा कि हम पहले ही ऊपर कह चुके हैं, उत्तरवादियों द्वारा उक्त दावे के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा इस मामले में कोई लिखित कथन दायर नहीं किया गया है। यहां तक कि याचिकाकर्ताओं ने भी औद्योगिक न्यायालय के समक्ष अपना स्वयं का कोई दावा-बयान दायर नहीं किया है। केवल यही नहीं, दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष न तो कोई दस्तावेजी प्रमाण प्रस्तुत किया गया और न ही कोई मौखिक साक्ष्य। दुर्भाग्यवश, केवल एक ही गवाह नाम-बाजीराम को उत्तरवादियों द्वारा 25.04.1996 को पेश कर परीक्षण किया गया। केवल इसी गवाह के कथन के आधार पर ही औद्योगिक न्यायालय द्वारा सम्पूर्ण अधिनिर्णय पारित किया गया है।

अब हमें यह जांचना है कि उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय की वैधता क्या है। यह निर्णय **उपयुक्त प्राधिकारी और अन्य बनाम सुधा पाटिल (श्रीमती) और अन्य (पूर्वोक्त)** में दिया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय अधिकारिता के प्रयोग के मापदंड सीमित हैं, जब किसी अधीनस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय की जांच की जाती है। यह अधिकार केवल पर्यवेक्षणीय प्रकृति का होने के कारण, और ऐसे अधिकार के प्रयोग में, यदि उच्च न्यायालय यह पाता है कि निर्णय पर पहुँचने में न्यायाधिकरण ने कुछ प्रासंगिक तथ्यों को नहीं माना, या कुछ बाहरी और अप्रासंगिक तथ्यों पर विचार किया, या निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, या निष्कर्ष ऐसा है कि कोई भी समझदार व्यक्ति उस आधार पर उस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता — तब ही उस निर्णय में हस्तक्षेप किया जा सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क किया कि चूंकि औद्योगिक विवाद उत्तरवादी क्रं.1/संघ के आग्रह पर संदर्भित किया गया था, अतः उत्तरवादी संघ पर यह बाध्यता थी कि वह अपने दावे को युक्तिसंगत रूप से, साक्ष्य और कथनों के आधार पर न्यायाधिकरण के समक्ष सिद्ध करे — जिसे वे स्थापित नहीं कर सके।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

राजस्थान स्टेट गंगानगर एस. मिल्स लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2004) 8 एस.सी.सी. 161 में दिए गए निर्णय का संदर्भ देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उत्तरवादी संघ द्वारा प्रस्तुत किए गए दावों को सिद्ध करने का दायित्व उसी पर था और उत्तरवादी संघ, श्रमिक सेवा के पृथकीकरण तथा उसकी अवैधता से संबंधित कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सकी। उत्तरवादी की ओर से परीक्षित गवाह ने भी इन तथ्यों को स्थापित नहीं किया है। वेतन/भत्ते आदि की कोई रसीद अभिलेख पर प्रमाणित नहीं हुई है। वह यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि महज़ मस्टर रोल या कंपनी के कर्मचारियों की सूची प्रस्तुत न करने से औद्योगिक न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकती कि सूची में उल्लेखित श्रमिक याचिकाकर्ता के कर्मचारी थे और उन्हें अवैध रूप से सेवा से हटाया गया।

उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय का भी उल्लेख किया, जो कि **म्युनिसिपल कारपोरेशन, फरीदाबाद बनाम श्रीनिवास 2004 (8) एस.सी.सी. पृष्ठ 195** में दिया गया था, और यह उल्लेखित किया कि औद्योगिक विवाद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि यह कार्यकर्ता पर था कि वह यह प्रमाणित करे कि उसने अपनी कथित छंटनी से पहले

एक वर्ष में लगातार 240 दिन कार्य किया था। उस मामले के तथ्यों के अनुसार, जब श्रमिकों ने न्यायाधिकरण या उच्च न्यायालय के समक्ष कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया, सिवाय स्वयं के परीक्षण के, तो यह माना गया कि उच्च न्यायालय ने केवल इस आधार पर उन्हें पुनः बहाल करके एक स्पष्ट त्रुटि की कि नियोक्ता द्वारा मस्टर रोल प्रस्तुत न किए जाने के आधार पर विपरीत अनुमान लगाया गया। वह आगे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इस निर्णय के आधार पर नियोक्ता के विरुद्ध केवल इस आधार पर कोई विपरीत अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि उसने साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए, क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(III)(g) का लाभ पाने के लिए किसी पक्ष को अपने पक्ष-समर्थन में कुछ साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक होता है, जो कि यहाँ पर अनुपस्थित है। अतः वर्तमान मामले में भी उन्हें ऐसा कोई लाभ नहीं दिया जा सकता। वह यह भी तर्क करते हैं कि किसी भी पक्ष पर अपने दावे को सिद्ध करने का भार हमेशा होता है। यहां तक कि एकपक्षीय मामलों में भी, जैसे दीवानी मामलों में, वादी को अपने ही साक्ष्यों के आधार पर अपने दावे को सिद्ध करना होता है और यदि वादी अपने दावे को सिद्ध करने में असफल रहता है, तो केवल इस आधार पर कि उत्तरवादी अनुपस्थित था और उसने वादी के दावे का विरोध नहीं किया, न्यायालय वादी का पक्ष स्वीकार नहीं करेगा। वह यह भी तर्क करते हैं कि यदि उत्तरवादियों द्वारा प्रस्तुत सभी साक्ष्यों को ध्यान में भी रखा जाए, तो भी औद्योगिक न्यायालय द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, उन्हें दर्ज नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत साक्ष्य अस्पष्ट और सामान्य हैं, जो संदर्भ के शर्त क्रं.3 में उल्लेखित कर्मचारियों के अधिकारों को सिद्ध नहीं करते हैं।

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(17) दूसरी ओर, उत्तरवादीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने **वर्कमेन द्वारा आनंद बाज़ार ग्रुप ऑफ़ पब्लिकेशन एम्प्लॉइज़ यूनियन बनाम आनंद बाज़ार पत्रिका लिमिटेड एवं अन्य, 1999 II सी.एल.आर. 79** में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए तर्क दिया कि साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान औद्योगिक न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों में लागू नहीं होते। यह ज़ोर देना कि तथ्यों को "कानूनी रूप से सिद्ध" किया जाए या "संदेह से परे" सिद्ध किया जाए, एक गलत दृष्टिकोण है। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यहाँ केवल "प्रासंगिक सामग्री" होनी चाहिए, न कि साक्ष्य। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि औद्योगिक न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठाया गया था कि परिशिष्ट/संदर्भ में टर्म/शर्त क्र.3 के अंतर्गत जिन कर्मचारियों का उल्लेख किया गया है, वे याचिकाकर्ता के कर्मचारी हैं और उन्हें गलत तरीके से सेवा से पृथक (टर्मिनेट) कर दिया गया है। अतः यदि याचिकाकर्ता इस दावे को असत्य बता रहा था, तो उसे कर्मचारियों की सेवा संबंधी अभिलेख जैसे दस्तावेज प्रस्तुत करने चाहिए थे और यह स्पष्ट करना चाहिए था कि क्या वे

वास्तव में याचिकाकर्ता के अधीन कार्यरत कर्मचारी हैं या नहीं? क्या वे सेवा से पृथक या निलंबित कर्मचारी हैं? क्या वे किसी प्रकार के राहत के पात्र हैं या नहीं? चूंकि याचिकाकर्ता इन तथ्यों से संबंधित कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं कर सका, इसलिए यह माना गया कि याचिकाकर्ता ने सर्वोत्तम साक्ष्य को दबा दिया जिसे वह प्रस्तुत कर सकता था। ऐसी स्थिति में याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना उचित था, जिसे इस मामले में माननीय औद्योगिक न्यायालय ने उचित रूप से निकाला है। वह (उत्तरवादी अधिवक्ता) उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय पर निर्भर करते है जो कि **गोपल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ और अन्य, AIR 1968 SC 1413** के मामले में दिया गया था। वह उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी निर्भर करते है, जो **1996(9) SCC 439 (फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया वर्कर्स यूनियन बनाम फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया और अन्य)** में दिया गया था। इसके अतिरिक्त वह निर्णय पर भी निर्भर करते है जो **उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम राजेश कुमार, (2003) 12 SCC 548** के मामले में दिया गया था। उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क किया कि उनके द्वारा प्रस्तुत सूची की सत्यता को प्रबंधन द्वारा औद्योगिक न्यायालय के समक्ष किसी भी प्रतिवाद-साक्ष्य या उनके पास उपलब्ध मूल अभिलेखों को प्रस्तुत कर चुनौती नहीं दी गई। अतः उक्त निर्णयों के सिद्धांत के अनुसार, यह सूची सही मानी जानी चाहिए और इस संबंध में दिया गया आदेश उचित माना जाना चाहिए। **आर.वी.ई. वेंकटाचल गौंडर बनाम अरुल्मिगु विस्वेसरास्वामी और वी.पी. मंदिर और अन्य (2003) 8 एस.सी.सी. 752** में पैर 29 के अंतर्गत यह निर्णय दिया गया है कि स्वामित्व के आधार पर कब्जा प्राप्त करने के दावे में वादी पर यह जिम्मेदारी होती है कि वह अपने स्वामित्व को सिद्ध करे और न्यायालय को यह संतुष्ट करे कि वह विधिक रूप से प्रतिवादी को वादग्रस्त संपत्ति से बेदखल करने और उसे पुनः कब्जा दिलवाने का अधिकारी है। हालांकि, **ए. राघवम्मा एवं अन्य बनाम ए. चेंचम्मा एवं अन्य, AIR 1964 एस.सी. 136** के निर्णय में यह स्पष्ट किया गया है कि "सबूत का भार" (burden of proof) एवं "साबित करने का भार" (onus of proof) में मूलभूत अंतर होता है। सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जिसे कोई तथ्य सिद्ध करना होता है और यह कभी नहीं बदलता, लेकिन साबित करने का भार बदल जाता है। ऐसा स्थानांतरण एक सतत प्रक्रिया है जो प्रमाण के मूल्यांकन में होती है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि यदि स्वामित्व के आधार पर कब्जे के दावे में वादी यह सिद्ध कर दे कि उसके दावे की “उच्च संभावना” है, तो दायित्व उत्तरवादी पर स्थानांतरित हो जाता है, और उत्तरवादी को यह दायित्व निर्वहन करना होता है। यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है, तो वादी पर जो प्रमाण का दायित्व था, वह पूरा मान लिया जाएगा और यह वादी के स्वामित्व के प्रमाण के रूप में

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

स्वीकार किया जाएगा। उपरोक्त विधिक सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उस स्थिति में लागू किया गया है जब मामला पक्षीय हो। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच ने **नगर पालिका निगम, ग्वालियर बनाम मोतीलाल मुननालाल, 1977 MPLJ 562** में अभिनिर्धारित किया है कि जब कोई मामला एकतरफा हो, तब भी न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होता है कि वादी का मामला कम से कम प्रथम दृष्टया सिद्ध हो। केवल प्रतिवादी की अनुपस्थिति यह मानने का आधार नहीं हो सकती कि वादी का पूरा दावा सत्य है। यहां तक कि यदि वादी *prima facie* (प्रथम दृष्टया) मामला स्थापित करने में असफल रहता है, तब भी प्रतिवादी को *ex debito justitiae* (न्यायिक ऋण के आधार पर) ऐसे डिक्री को निरस्त करवाने का अधिकार प्राप्त होता है। आगे यह भी माना गया है कि भले ही कोई मुद्दे निर्धारित न किए गए हों, यह वादी की यह जिम्मेदारी समाप्त नहीं करता कि वह अपने मामले को सिद्ध करे। वादी बाध्य है कि वह अपना मामला न्यायालय की संतुष्टि तक सिद्ध करे, और केवल प्रतिवादी की अनुपस्थिति से उसका प्रमाण का बोझ कम नहीं होता।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों और उसमें निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में यदि वर्तमान मामले का परीक्षण करें, तो यह प्रतीत होता है कि उपरोक्त बिंदुओं पर दावा प्रस्तुत करने के बाद, उत्तरवादी यूनियन ने केवल एक गवाह की जांच कराई। उक्त गवाह ने एक अस्पष्ट कथन दिया है जो न तो रोजगार के तथ्य, न ही सेवा से पृथकीकरण के तथ्य और न ही पृथकीकरण की उचित प्रक्रिया के पालन से संबंधित है। कथन यह स्पष्ट नहीं करता कि कितने लोगों को किस तिथि को सेवा से पृथक (टर्मिनेट) किया गया और वे लोग कौन हैं। जैसा कि कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान औद्योगिक न्यायाधिकरण की कार्यवाही में लागू नहीं होते और यह उचित नहीं है कि तथ्यों को "कानूनी रूप से सिद्ध" या "संदेह से परे" सिद्ध करने पर ज़ोर दिया जाए। लेकिन साथ ही, वही निर्णय यह भी कहता है कि निर्णय लेने के लिए केवल "महत्वपूर्ण सामग्री" (material) होनी चाहिए, भले ही वह साक्ष्य अधिनियम के अनुसार न हो। यहां तक कि यदि हम इस दृष्टिकोण से मामले की जांच करें, तो भी प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत एकमात्र गवाह के बयान को देखने के बाद हम सुरक्षित रूप से कह सकते हैं कि जिस वस्तु को इस मामले में निर्णय लेने हेतु "महत्वपूर्ण सामग्री" (material) कहा गया है, वह भी इस मामले में अनुपस्थित है। और यह कहा जा सकता है कि इस न्यायिक निर्णय के सिद्धांत को लागू करने के बाद भी संघ का दावा सिद्ध नहीं माना जा सकता और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए, हम यह मानते हैं कि उत्तरवादी क्रं.1 यह स्थापित नहीं कर सका कि

अनुसूची में सूचीबद्ध व्यक्ति याचिकाकर्ता के श्रमिक हैं और उन्हें प्रबंधन द्वारा अवैध रूप से निष्कासित कर दिया गया है। यहाँ तक कि नियोक्ता और कर्मचारी के बीच संबंध को लेकर एक प्रारंभिक प्रमाण (prima facie proof) भी स्थापित नहीं किया गया है और पुनर्नियुक्ति का आदेश अभिलेख पर अस्पष्ट और अपर्याप्त सामग्री के आधार पर पारित होता प्रतीत होता है। जहाँ तक भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 खंड III (g) के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष (adverse inference) निकालने का प्रश्न है, जैसा कि **म्युनिसिपल कारपोरेशन, फरीदाबाद (पूर्वोक्त)** में कहा गया है, उस लाभ को प्राप्त करने के लिए प्रतिवादी यूनियन को अपने मामले के समर्थन में कुछ साक्ष्य प्रस्तुत करने होते हैं। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी यह करने में विफल रहा है कि वह अपने कथन के समर्थन में कुछ ऐसा साक्ष्य ही प्रस्तुत कर सके जो धारा 114 खंड III(g) के प्रावधानों को आकर्षित कर सके। अतः प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत दलीलों को बरकरार नहीं रखा जा सकता और उक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए प्रतिवादी का दावा प्रमाणित नहीं माना जा सकता।

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उत्तरवादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने **गोपाल कृष्णज केतकर बनाम मो. हाजी लतीफ़ (पूर्वोक्त)** में आए निर्णय पर अत्यधिक भरोसा किया है, जिसमें यह कहा गया है कि भले ही किसी पक्ष पर सबूत का भार न हो, यदि वह ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ जो उसके कब्जे में हैं और जो मुद्दे पर प्रकाश डाल सकते हैं, उन्हें कोर्ट से छिपाता है, तो कोर्ट प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि जो पक्ष कुछ विशेष तथ्यों पर निर्भर करना चाहता है, उसके लिए यह उचित व्यवहार नहीं है कि वह उन सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्यों को, जो उसके कब्जे में हैं और जो विवादित मुद्दों पर प्रकाश डाल सकते हैं, न्यायालय से छिपा ले और केवल "साबित करने का भार" (onus of proof) के अमूर्त सिद्धांत पर निर्भर रहे। इस कानून पर भरोसा करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए, जिसे औद्योगिक न्यायालय ने याचिकाकर्ता के खिलाफ सही रूप से निकाला, क्योंकि यह याचिकाकर्ता कंपनी थी जिसके पास उपस्थिति रजिस्टर और अन्य दस्तावेज़ थे, जो उनके कब्जे में थे और जिन्हें आसानी से विवादित मुद्दों जैसे कि नियोक्ता और कर्मचारी के संबंध, सेवा समाप्ति का तथ्य आदि पर प्रकाश डालने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता था। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को इस मामले में कभी लागू नहीं किया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून इस बिंदु पर भिन्न है कि उस मामले में अपीलकर्ता ने दरगाह आय का हिसाब पेश नहीं किया। साक्ष्य के दौरान, उसने यह स्वीकार किया कि वह प्लॉट नंबर 134 की आय का लाभ

उठा रहा था, लेकिन उसने अपने तर्क को सिद्ध करने के लिए कोई खाता प्रस्तुत नहीं किया। केवल इतना ही नहीं, यह भी एक महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति थी कि अपीलकर्ता के पास दरगाह की आय का अभिलेख था और वह खाता अलग से रखा गया था, लेकिन अपीलकर्ता ने न तो अपने स्वयं के खाते और न ही दरगाह के खाते यह दिखाने के लिए प्रस्तुत किए कि प्लॉट नंबर 134 से प्राप्त आय को कैसे निपटाया गया। इन्हीं परिस्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त कानून की व्याख्या की, जिसके अनुप्रयोग की पूर्व शर्त यह है कि तथाकथित सबसे अच्छा साक्ष्य संबंधित पक्ष के कब्जे में होना चाहिए। निर्णय इस बिंदु पर भिन्न है। वर्तमान मामले में ऐसी कोई परिस्थितियाँ नहीं हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि यूनियन/उत्तरवादी क्र.1 के कर्मचारियों की सेवाओं से संबंधित कुछ अभिलेख याचिकाकर्ता के कब्जे में निश्चित रूप से थे। यहाँ याचिकाकर्ता ने कहीं भी यह स्वीकार नहीं किया है कि उत्तरवादी यूनियन/संघ के सदस्य उनके कर्मचारी हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि यहाँ तक कि लिखित बयान या दावों का विवरण आदि भी याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल नहीं किया गया और अंततः उत्तरवादी यूनियन/संघ भी अभिलेख पर ऐसा कोई भी प्रथम दृष्टया साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रही जिसके आधार पर औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया अधिनिर्णय इस न्यायालय द्वारा बनाए रखा जा सके।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(18) उपरोक्त चर्चा और उपर्युक्त संदर्भित कानून के आधार पर, हमारा मत है कि न्यायाधिकरण ने मामले के इन पहलुओं पर विचार नहीं किया और न्यायाधिकरण द्वारा ऊपर उल्लेखित तथ्यों के संबंध में की गई जांच अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से पूरी तरह से समर्थित नहीं पाई जाती। हम न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय को रद्द/निरस्त करते हैं और यह निर्णय देते हैं कि न्यायाधिकरण द्वारा बहाली और पिछली मजदूरी के संबंध में किया गया अवार्ड, जो संदर्भ की टर्म/शर्त क्रं.3 से संलग्न सूची में उल्लिखित व्यक्तियों के लिए था, गलत तरीके से पारित किया गया है।

(19) अंत में, याचिकाकर्ता के पक्ष के विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क करते हैं कि संदर्भ की टर्म/शर्त क्रं.1 और 2 का उत्तर भी गलत है। वह यह तर्क देते हैं कि नियोक्ता की आर्थिक क्षमता पर विचार किए बिना उपरोक्त शर्तों से संबंधित अधिनिर्णय पारित किया गया है। वह **ऑफिसर्स एवं सुपरवाईजर्स आई.डी.पी.एल. - बनाम – चेयरमैन एवं एम् .डी., आई.डी.पी.एल. एवं अन्य AIR 2003 S.C. 2870** में दिए गए निर्णय का उल्लेख करते हैं। वह एक दस्तावेज़ पर भी ध्यान आकर्षित करते हैं, परिशिष्ट P-1, जो B.I.F.R. का एक आदेश है संदर्भित प्रकरण क्रं.162/98 में। विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क प्रस्तुत करते हैं कि दिनांक 07.08.1998 के इस आदेश द्वारा कंपनी

को अधिनियम की धारा 3(1)(o) के अंतर्गत एक रूग्ण/बीमार घोषित किया गया है और औद्योगिक न्यायालय को इन शर्तों के आधार पर ऐसा अधिनिर्णय पारित नहीं करना चाहिए था। इस न्यायालय को यह स्पष्ट नहीं है कि क्या यह दस्तावेज़ औद्योगिक न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था या नहीं। हम इस न्यायालय में दूसरी बार की सुनवाई के दौरान पहली बार उठाए गए ऐसे किसी तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते। हालांकि, चूंकि हमने इस निर्णय को, जहाँ तक वह पुनःस्थापन और बकाया वेतन से संबंधित है, रद्द/ निरस्त कर दिया है, इसलिए पुनःस्थापन और बकाया वेतन के राहत को रद्द करने के परिणामस्वरूप, इन शर्तों पर दिए गए अधिनिर्णय को भी रद्द/निरस्त किया जाता है।

(20) परिणामस्वरूप, हम दिनांक 16.10.1999 का पूरा अधिनिर्णय रद्द/निरस्त करते हैं। हमारा यह मत है कि इस मामले की परिस्थितियों और तथ्यों को देखते हुए, यह मामला औद्योगिक न्यायालय द्वारा विधिक तरीके से तय किया जाना चाहिए। अतः हम निर्देश देते हैं कि यह मामला औद्योगिक न्यायालय को पुनःविचारण हेतु वापस भेजा जाए ताकि वह विधिवत एवं गुण-दोष के आधार पर इसका निर्णय करे। पक्षों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे उचित सहयोग प्रदान करें। हम निर्देश देते हैं कि औद्योगिक न्यायालय दोनों पक्षों को उचित अवसर दे ताकि वे अपना दावा/जवाबदावा प्रस्तुत कर सकें, यदि वे ऐसा करना चाहें। इसके बाद न्यायालय पक्षों को उनके तर्कों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का पुनः अवसर दे और संपूर्ण सुनवाई के बाद युक्तियुक्त निर्णय पारित किया जाए। हम यह भी निर्देश देते हैं कि औद्योगिक न्यायालय इस मामले का निपटारा यथासंभव शीघ्र करे, अधिमानतः उक्त न्यायालय को अभिलेख प्राप्त होने की तिथि से 4 माह की अवधि में। रजिस्ट्री को निर्देशित किया जाता है कि वह W.P. NO. 75/2000 के साथ टैग किए गए अभिलेखों को तत्क्षण प्रेषित करे, साथ ही निर्णय की एक प्रति भी भेजी जाए। नोटिस की सेवा आदि से संबंधित किसी भी आगे की जटिलता से बचने के लिए, हम निर्देश देते हैं कि पक्षकार 25 जुलाई 2005 को औद्योगिक न्यायालय के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करें।

वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

हस्ता /-
मुख्या न्यायाधीश

हस्ता /-
सुनील कुमार सिन्हा
न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By: **Ranjan Gupta, Advocate**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur